अमर आग है

श्री अटल बिहारी वाजपेयी की
चुनी हुई कविताएँ

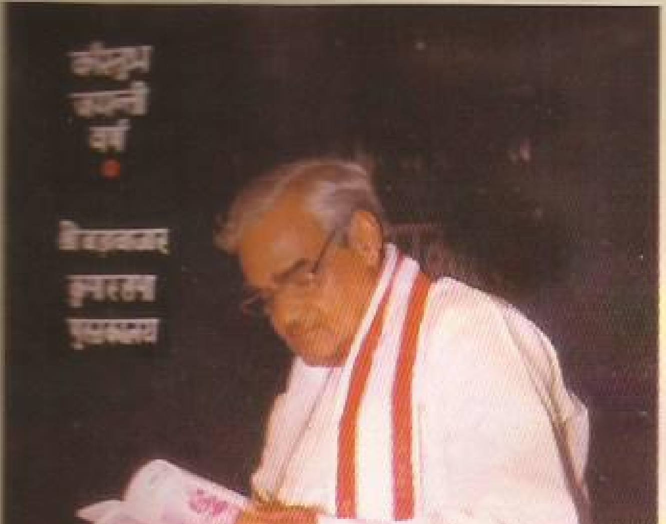

एकल काव्य-पाठ के अवसर प्रकाशित कविता-संग्रह 'अमर आग है'
का अवलोकन करते हुए कविवर अटल बिहारी वाजपेयी।

अमर आग है

श्री अटल बिहारी वाजपेयी की चुनी हुई कविताएँ

सम्पादक :

विष्णुकान्त शास्त्री

सहयोगी :

प्रेमशंकर त्रिपाठी ● जुगलकिशोर जैथलिया

स्थापित १९१८ ई०

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय

कोलकाता

प्रकाशक :
महावीर बजाज, मन्त्री
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय
१-सी, मदनमोहन बर्मन स्ट्रीट
कोलकाता-७०० ००७
टेलीफैक्स : २३८ ८२१५
ई-मेल : kumarsabha@vsnl.net

□

प्रथम संस्करण :
तुलसी जयन्ती, २०५१ वि०
१९९४ ई०

□

द्वितीय संस्करण :
विजयादशमी २०५१ वि०

□

पुनर्मुद्रण :
विजयादशमी, २०५८ वि०

□

मूल्य ५०/-

□

मुद्रक :
एसकेज
८, शोभाराम बैशाख स्ट्रीट,
कोलकाता-७

सम्पादकीय : प्रथम संस्करण

वज्र से भी कठोर अडिग संकल्प सम्पन्न राजनेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी के कुसुम कोमल हृदय से उमड़ पड़ने वाली कविताएँ गिरि-हृदय से फूट निकलने वाली निर्झरियों के सदृश एक ओर जहाँ अपने दुर्दान्त आवेग से किसी भी अवगाहनकर्ता को बहा ले जाने में समर्थ हैं वहीं दूसरी ओर वे अपनी निर्मलता, शीतलता और प्राणवत्ता से जीवन के दुर्गम पथ के राहियों की प्यास और थकान को हर कर नयी प्रेरणा की संजीवनी प्रदान करने की क्षमता से भी सम्पन्न हैं। इनका सहज स्वर तो देशभक्तिपूर्ण शौर्य का ही है किन्तु कभी-कभी नव सर्जना की वेदना से ओत-प्रोत करुणा की रागिनी को भी ये ध्वनित करती हैं। ऐसा विचित्र हो गया है अपने देश का वर्तमान कि उस पर हँसना संभव नहीं और रोना तो अटल जी जानते ही नहीं, अतः व्यंग्य की तिर्यक् रेखाओं से उसकी कुरूपता को उजागर करने का प्रयास भी उन्होंने अपनी कुछ कविताओं में किया है।

अटलजी के मुख से उनकी कविताओं को सुन पाना निश्चय ही दुर्लभ उपलब्धि है। इसकी स्मृति को स्थायी बनाने के लिये अटलजी के काव्य कृतित्व की एक झलक इस पुस्तिका में प्रस्तुत करते हुए हमारी कामना है कि श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय की कौस्तुभ जयन्ती (१९९४ ई०) के अवसर पर आयोजित यह एकल-काव्य-पाठ समारोह केवल श्रोताओं को ही अभिभूत न करे, राजनीति के घमासान में लिप्त अग्रणी राजनेता के अन्तर के उपेक्षित कवि को भी उद्दीप्त करे और उसकी स्फुरणा के प्रमाण के रूप में हमें शीघ्र ही प्राप्त हो कवि का समग्र काव्य-संभार। ●

—विष्णुकान्त शास्त्री

द्वितीय संस्करण पर

जनसाधारण ने इतनी प्रगाढ़ आत्मीयता से अटलजी की काव्य-पुस्तक '**अमर आग है**' का स्वागत किया कि उसका प्रथम संस्करण दो महीने में ही समाप्त हो गया। तुलसी जयन्ती पर इस पुस्तक का प्रथम संस्करण छपा था, अब विजया दशमी के शुभ अवसर पर द्वितीय संस्करण प्रकाशित कर श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय गौरवान्वित है। इस संस्करण में काव्य प्रेमियों की रुचि का ध्यान रखते हुए अटलजी की ९ और कविताएँ अन्त में जोड़ दी गई हैं। हमें विश्वास है कि अटलजी के काव्यरस-प्रेमियों की पिपासा इस द्वितीय संस्करण से और भी अधिक तृप्त हो सकेगी।

यद्यपि हम भली-भांति जानते हैं कि श्री अटल बिहारी वाजपेयी के काव्य-प्रेमियों का यह आग्रह अब भी बना रहेगा कि उनकी समस्त कविताओं का एकत्र संकलन शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित हो। उनकी इस मांग का हम भी समर्थन करते हैं और यह अपेक्षा रखते हैं कि शीघ्र ही उनका समग्र काव्य-संभार सगौरव प्रकाशित हो सकेगा।* ●

---

* यह हर्ष का विषय है कि डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा द्वारा सम्पादित पुस्तक जिसमें अटलजी के काव्य, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर व्यापक सामग्री संग्रहित है, किताबघर, नयी दिल्ली-२ द्वारा प्रकाशित हो चुकी है।

अनुक्रम

आज सिन्धु में ज्वार उठा है • १
जम्मू की पुकार • ३
अमर आग है • ६
हिन्दू तन-मन, हिन्दू जीवन • ११
स्वतन्त्रता दिवस की पुकार • १४
कोटि चरण बढ़ रहे • १५
आज कहे चाहे कुछ दुनिया • २०
आये जिस-जिस की हिम्मत हो • २१
गीत नहीं गाता हूं • २३
सपना टूट गया • २४
आओ फिर से दिया जलायें • २५
गीत नया गाता हूं • २६
दूर कहीं कोई रोता है • २७
जीवन की ढलने लगी सांझ • २८

मातृ-पूजा प्रतिबंधित • २९
अन्तर्द्वन्द्व • ३०
कौरव कौन, कौन पांडव • ३१
ऊँचाई • ३२
पहचान • ३५
न मैं चुप हूँ, न गाता हूँ • ३८
दूध में दरार पड़ गयी • ३९
हरी-हरी दूब पर • ४०
जंग न होने देंगे • ४१
रोते-रोते रात सो गई • ४२
राह कौन सी जाऊँ मैं • ४३
जीवन बीत चला • ४४
६१वीं वर्षगांठ पर • ४५
६८वें जन्म दिवस पर • ४६
अंग्रेजी के गढ़ को तोड़ो • ४७
अनुशासन पर्व • ४८
गूँजी हिन्दी • ४९
पुनः चमकेगा दिनकर • ५०
कदम मिलाकर चलना होगा • ५१
गगन में लहरता है भगवा हमारा • ५३
झुक नहीं सकते • ५५
उनकी याद करें • ५६
देखो हम बढ़ते ही जाते • ५८
पड़ोसी से • ६०
नयी गाँठ लगती • ६२
ठन गई • ६३
मैं सोचने लगता हूँ • ६४
यक्ष प्रश्न • ६५

■

आज सिन्धु में ज्वार उठा है

आज सिन्धु में ज्वार उठा है, नगपति फिर ललकार उठा है
कुरुक्षेत्र के कणकण से फिर, पांचजन्य हुंकार उठा है।

शत-शत आघातों को सहकर, जीवित हिन्दुस्थान हमारा
जग के मस्तक पर रोली सा, शोभित हिन्दुस्थान हमारा।

दुनिया का इतिहास पूछता, रोम कहाँ, यूनान कहाँ है
घर-घर में शुभ अग्नि जलाता, वह उन्नत ईरान कहाँ है ?

दीप बुझे पश्चिमी गगन के, व्याप्त हुआ बर्बर अँधियारा
किन्तु चीरकर तम की छाती, चमका हिन्दुस्थान हमारा।

हमने उर का स्नेह लुटाकर, पीड़ित ईरानी पाले हैं
निज जीवन की ज्योति जला, मानवता के दीपक बाले हैं।

जग को अमृत का घट देकर, हमने विष का पान किया था
मानवता के लिए हर्ष से, अस्थि-वज्र का दान दिया था।

जब पश्चिम ने वन-फल खाकर, छाल पहनकर लाज बचाई
तब भारत से साम-गान का, स्वर्गिक स्वर था दिया सुनाई।

अज्ञानी मानव को हमने, दिव्य ज्ञान का दान दिया था
अम्बर के ललाट को चूमा, अतल सिंधु को छान लिया था।

साक्षी है इतिहास प्रकृति का, तब से अनुपम अभिनय होता
पूरब में उगता है सूरज, पश्चिम के तम में लय होता।

विश्व गगन पर अगणित गौरव, के दीपक अब भी जलते हैं
कोटि-कोटि नयनों में स्वर्णिम, युग के शत सपने पलते हैं।
किन्तु आज पुत्रों के शोणित, से रंजित वसुधा की छाती
टुकड़े-टुकड़े हुई विभाजित, बलिदानी पुरखों की थाती।

कण-कण पर शोणित बिखरा है, पग-पग पर माथे की रोली
इधर मनी सुख की दीवाली, और उधर जन-धन की होली।

माँगों का सिन्दूर, चिता की भस्म बना हा-हा खाता है
अगणित जीवन-दीप बुझाता, पापों का झोंका आता है।

तट से अपना सर टकराकर, झेलम की लहरें पुकारती
यूनानी का रक्त दिखाकर, चन्द्रगुप्त को हैं गुहारती।

रो-रोकर पंजाब पूछता, किसने है दोआब बनाया
किसने मन्दिर गुरुद्वारों को, अधर्म का अंगार दिखाया ?

खड़े देहली पर हो किसने, पौरुष को ललकारा
किसने पापी हाथ बढ़ाकर, माँ का मुकुट उतारा ?

काश्मीर के नन्दन वन को, किसने है सुलगाया
किसने छाती पर अन्यायों, का अम्बार सजाया ?

आँख खोलकर देखो ! घर में भीषण आग लगी है
धर्म सभ्यता, संस्कृति खाने, दानव-क्षुधा जगी है।

हिन्दू कहने में शरमाते, दूध लजाते लाज न आती
घोर पतन है, अपनी माँ को, माँ कहने में फटती छाती।

जिसने रक्त पिलाकर पाला, क्षण भर उसका वेश निहारो
उसकी सूनी मांग निहारो, बिखरे-बिखरे केश निहारो।

जब तक दु:शासन जीवित है, वेणी कैसे बँध पायेगी
कोटि-कोटि संतति जीवित है, माँ की लाज न लुट पायेगी।

जम्मू की पुकार

अत्याचारी ने आज पुनः ललकारा,
अन्यायी का चलता है दमन-दुधारा।
आँखों के आगे सत्य मिटा जाता है,
भारतमाता का शीश कटा जाता है।

क्या पुनः देश टुकड़ों में बँट जाएगा ?
क्या सबका शोणित पानी बन जाएगा ?
कब तक दानव की माया चलने देंगे ?
कब तक भस्मासुर को हम छलने देंगे ?

कब तक जम्मू को यों ही जलने देंगे ?
कब तक जुल्मों की मदिरा ढलने देंगे ?
चुपचाप सहेंगे कब तक लाठी गोली ?
कब तक खेलेंगे दुश्मन खूँ से होली ?

प्रह्लाद परीक्षा की बेला अब आई,
होलिका बनी देखो अब्दुल्लाशाही ।
मॉं-बहनों का अपमान सहेंगे कब तक?
भोले पांडव चुपचाप रहेंगे कब तक ?

आखिर सहने की भी सीमा होती है,
सागर के उर में भी ज्वाला सोती है।
मलयानिल कभी बवंडर बन ही जाता,
भोले शिव का तीसरा नेत्र खुल जाता ।

जिनको जन-धन से मोह प्राण से ममता,
वे दूर रहें अब 'पाञ्चजन्य' है बजता।
जो विमुख युद्ध से, हठी, क्रूर, कादर हैं,
रणभेरी सुन कम्पित जिन के अन्तर हैं।

वे दूर रहें चूड़ियॉं पहन घर बैठें,
बहनें थूकें मातायें कान उमेठें ।
जो मानसिंह के वंशज सम्मुख आयें,
फिर एक बार घर में ही आग लगायें ।

पर अन्यायी की लंका अब न रहेगी,
आने वाली सन्तानें यूँ न कहेंगी ।
पुत्रों के रहते कटा जननि का माथा,
चुप रहे देखते अन्यायों की गाथा ।

अब शोणित से इतिहास नया लिखना है,
बलि-पथ पर निर्भय पांव आज रखना है।
आओ खण्डित भारत के वासी आओ,
कश्मीर बुलाता त्याग उदासी आओ ।

शंकर का मठ कल्हण का काव्य जगाता,
जम्मू का कण-कण त्राहि-त्राहि चिल्लाता।
लो सुनो, शहीदों की पुकार आती है,
अत्याचारी की सत्ता थर्राती है।

उजड़े सुहाग की लाली तुम्हें बुलाती,
अधजली चिता मतवाली तुम्हें जगाती ।
अस्थियां शहीदों की देती आमन्त्रण,
बलिवेदी पर कर दो सर्वस्व-समर्पण ।

कारागारों की दीवारों का न्योता,
कैसी दुर्बलता अब कैसा समझौता ?
हाथों में लेकर प्राण चलो मतवालों,
सीने में लेकर आग चलो प्रणवालों ।

जो कदम बढ़ा अब पीछे नहीं हटेगा,
बच्चा-बच्चा हँस-हँस कर मरे मिटेगा ।
वर्षों के बाद आज बलि का दिन आया,
अन्याय-न्याय का चिर-संघर्षण आया ।

फिर एक बार भारत की किस्मत जागी,
जनता जागी, अपमानित अस्मत जागी ।
देखो दिल्ली की कीर्ति न कम हो जाए,
कण-कण पर फिर बलि की छाया छा जाए । ●

(१९५३ ई० के जम्मू आन्दोलन के समय रचित)

अमर आग है

कोटि-कोटि आकुल-हृदयों में
सुलग रही है जो चिनगारी,
अमर आग है, अमर आग है।

(१)

उत्तर दिशि में अजित दुर्ग सा,
जागरूक प्रहरी युग-युग का,
मूर्तिमन्त स्थैर्य, धीरता की प्रतिमा सा,
अटल अडिग नगपति विशाल है ।
नभ की छाती को छूता सा,
कीर्ति-पुञ्ज सा,
दिव्य दीपकों के प्रकाश में—
झिल-मिल, झिल-मिल—
दीपित माँ का पूज्य भाल है ।
कौन कह रहा उसे हिमालय ?
वह तो हिमावृत्त ज्वालागिरि ।
अणु-अणु, कण-कण, गह्वर-कन्दर,
गुञ्जित ध्वनित कर रहा अब तक—
डिम-डिम डमरू का भैरव स्वर,
गौरीशंकर के गिरि गह्वर
शैल-शिखर, निर्झर, वन-उपवन
तरु, तृण दीपित,
शंकर के तीसरे नयन की—
प्रलय-वह्नि से जगमग ज्योतित,
जिसको छू कर,
क्षण भर ही में,
काम रह गया था मुट्ठी भर।

यही आग ले प्रतिदिन प्राची—
अपना अरुण सुहाग सजाती,
और प्रखर दिनकर की
कंचन काया,
इसी आग में पल कर
निशि-निशि, दिन-दिन,
जल-जल, प्रतिपल,
सृष्टि-प्रलय-पर्यन्त तमावृत
जगती को रास्ता दिखाती ।
यही आग ले हिन्दुमहासागर की
छाती है धधकाती।
लहर-लहर प्रज्वाल, लपट बन
पूर्व पश्चिमी घाटों को छू,
सदियों की हतभाग्य निशा में
सोये शिलाखण्ड सुलगाती ।
नयन-नयन में यही आग ले
कण्ठ-कण्ठ में प्रलय-राग ले,
अब तक हिन्दुस्थान जिया है।
इसी आग की दिव्य विभा में,
सप्त-सिन्धु के कल कछार पर,
सुर-सरिता की धवल धार पर
तीर तटों पर,
पर्णकुटी में पर्णासन पर,
कोटि-कोटि ऋषियों-मुनियों ने—
दिव्य ज्ञान का सोम पिया था,
जिसका कुछ उच्छिष्ट मात्र
बर्बर पश्चिम ने,

दया-दान सा,
निज जीवन को सफल मानकर,
कर पसार कर
सिर-आँखों पर धार लिया था ।
वेद-वेद के मन्त्र-मन्त्र में
मन्त्र-मन्त्र की पंक्ति-पंक्ति में
पंक्ति-पंक्ति के शब्द-शब्द में,
शब्द-शब्द के अक्षर स्वर में,
दिव्य ज्ञान-आलोक प्रदीपित,
सत्यं, शिवं, सुन्दरं शोभित,
कपिल कणाद और जैमिनि की
स्वानुभूति का अमर प्रकाशन,
विशद-विवेचन, प्रत्यालोचन,
ब्रह्म, जगत, माया का दर्शन ।
कोटि-कोटि कंठों में गूंजा
जो अतिमंगलमय स्वर्गिक स्वर,
अमर राग है, अमर राग है ।
कोटि-कोटि आकुल हृदयों में
सुलग रही है जो चिनगारी
अमर आग है, अमर आग है ।

(२)

यही आग सरयू के तट पर
दशरथजी के राजमहल में,
धन-समूह में चल चपला सी,
प्रकट हुई, प्रज्ज्वलित हुई थी ।
दैत्य-दानवों के अधर्म से—
पीड़ित पुण्यभूमि का जन-जन,
शंकित मन-मन,

त्रसित विप्र,
आकुल मुनिवर-गण,
बोल रही अधर्म की तूती
दुस्तर हुआ धर्म का पालन ।
तब स्वदेश-रक्षार्थ देश का
सोया क्षत्रियत्व जागा था ।
राम-रूप में प्रकट हुई यह ज्वाला,
जिसने
असुर जलाए
देश बचाया,
वाल्मीकि ने जिसको गाया ।
चकाचौंध दुनिया ने देखी
सीता के सतीत्व की ज्वाला,
विश्व चकित रह गया देख कर
नारी की रक्षा-निमित्त जब—
नर क्या वानर ने भी अपना,
महाकाल की बलि-वेदी पर,
अगणित हो कर
सस्मित हर्षित शीश चढ़ाया ।

(३)

यही आग प्रज्ज्वलित हुई थी –
यमुना की आकुल आहों से,
अत्याचार-प्रपीड़ित ब्रज के
अश्रु-सिन्धु में बड़वानल बन ।
कौन सह सका मां का क्रन्दन ?
दीन देवकी ने कारा में,
सुलगाई थी यही आग, जो
कृष्ण-रूप में फूट पड़ी थी

जिसको छू कर,
माँ के कर की कड़ियां,
पग की लड़ियां,
चट-चट टूट गई थीं
पांचजन्य का भैरव स्वर सुन,
तड़प उठा आक्रुद्ध सुदर्शन,
अर्जुन का गांडीव
भीम की गदा
धर्म का धर्म डट गया,
अमर भूमि में,
समर भूमि में,
धर्म भूमि में,
कर्म भूमि में,
गूंज उठी गीता की वाणी,
मंगलमय जन-जन कल्याणी।
अपढ़, अजान विश्व ने पायी
शीश झुकाकर एक धरोहर ।
कौन दार्शनिक दे पाया है,
अब तक ऐसा जीवन-दर्शन ?
कालिंदी के कल कछार पर
कृष्ण-कंठ से गूंजा जो स्वर
अमर राग है, अमर राग है ।
कोटि-कोटि आकुल हृदयों में
सुलग रही है जो चिनगारी,
अमर आग है, अमर आग है । ●

हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय !

(१)

मैं शंकर का वह क्रोधानल, कर सकता जगती क्षार-क्षार ।
डमरू की वह प्रलय-ध्वनि हूँ, जिसमें नचता भीषण सँहार ।
रणचण्डी की अतृप्त प्यास, मैं दुर्गा का उन्मत्त हास ।
मैं यम की प्रलयंकर पुकार, जलते मरघट का धुंआधार ।
फिर अन्तरतम की ज्वाला से, जगती में आग लगा दूँ मैं ।
यदि धधक उठे जल, थल, अम्बर, जड़, चेतन तो कैसा विस्मय ?
हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय !

(२)

मैं आदि पुरुष, निर्भयता का वरदान लिये आया भू पर ।
पय पीकर सब मरते आये, मैं अमर हुआ लो विष पी कर ।
अधरों की प्यास बुझाई है, पी कर मैंने वह आग प्रखर ।
हो जाती दुनिया भस्मसात् जिसको पलभर में ही छूकर ।
भय से व्याकुल फिर दुनिया ने, प्रारम्भ किया मेरा पूजन ।
मैं नर, नारायण, नीलकंठ, बन गया न इस में कुछ संशय ।
हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय !

(३)

मैं अखिल विश्व का गुरु महान, देता विद्या का अमरदान ।
मैंने दिखलाया मुक्ति-मार्ग, मैंने सिखलाया ब्रह्मज्ञान ।
मेरे वेदों का ज्ञान अमर, मेरे वेदों की ज्योति प्रखर ।
मानव के मन का अन्धकार, क्या कभी सामने सका ठहर ?

मेरा स्वर नभ में घहर-घहर, सागर के जल में छहर-छहर।
इस कोने से उस कोने तक, कर सकता जगती सौरभमय ।
हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय !

(४)

मैं तेजपुंज, तमलीन जगत में फैलाया मैंने प्रकाश ।
जगती का रच करके विनाश, कब चाहा है निज का विकास ?
शरणागत की रक्षा की है, मैंने अपना जीवन देकर ।
विश्वास नहीं यदि आता तो, साक्षी है यह इतिहास अमर ।
यदि आज देहली के खण्डहर, सदियों की निद्रा से जग कर ।
गुंजार उठे ऊंचे स्वर से, "हिन्दू की जय" तो क्या विस्मय ?
हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय !

(५)

दुनिया के वीराने पथ पर, जब-जब नर ने खाई ठोकर ।
दो आँसू शेष बचा पाया, जब-जब मानव सब कुछ खोकर ।
मैं आया तभी द्रवित होकर, मैं आया ज्ञानदीप ले कर ।
भूला-भटका मानव पथ पर, चल निकला सोते से जग कर ।
पथ के आवर्तों से थक कर, जो बैठ गया आधे पथ पर ।
उस नर को राह दिखाना ही मेरा सदैव का दृढ़ निश्चय ।
हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय !

(६)

मैंने छाती का लहू पिला, पाले विदेश के क्षुधित लाल ।
मुझ को मानव में भेद नहीं, मेरा अन्तस्थल वर विशाल ।
जग के ठुकराये लोगों को, लो मेरे घर का खुला द्वार ।
अपना सब कुछ हूँ लुटा चुका, फिर भी अक्षय है धनागार।
मेरा हीरा पाकर ज्योतित, परकीयों का वह राजमुकुट ।
यदि इन चरणों पर झुक जाए, कल वह किरीट तो क्या विस्मय ?
हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय !

(७)

मैं वीर पुत्र, मेरी जननी के, जगती में जौहर अपार ।
अकबर के पुत्रों से पूछो, क्या याद उन्हें मीनाबजार ?
क्या याद उन्हें चित्तौड़ दुर्ग में, जलने वाली आग प्रखर ?
जब हाय सहस्त्रों मातायें, तिल-तिल जलकर हो गई अमर।
वह बुझने वाली आग नहीं, रग-रग में उसे समाये हूँ ।
यदि कभी अचानक फूट पड़े, विप्लव बनकर तो क्या विस्मय ?
हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय !

(८)

होकर स्वतन्त्र मैंने कब चाहा, है कर लूं जग को गुलाम ?
मैंने तो सदा सिखाया है, करना अपने मन को गुलाम ।
गोपाल, राम के नामों पर, कब मैंने अत्याचार किये ?
कब दुनिया को हिन्दू करने, घर-घर में नर-संहार किये ?
कोई बतलाए काबुल में, जाकर कितनी तोड़ी मस्जिद ?
भूभाग नहीं, शत-शत मानव के हृदय जीतने का निश्चय ।
हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय !

(९)

मैं एक बिन्दु, परिपूर्ण सिन्धु, है यह मेरा हिन्दू समाज ।
मेरा इसका सम्बन्ध अमर, मैं व्यक्ति और यह है समाज ।
इससे मैंने पाया तन मन, इससे मैंने पाया जीवन ।
मेरा तो बस कर्त्तव्य यही, कर दूँ सब कुछ इसके अर्पण ।
मैं तो समाज की थाती हूँ, मैं तो समाज का हूँ सेवक ।
मैं तो समष्टि के लिए व्यष्टि का, कर सकता बलिदान अभय ।
हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय ! ●

स्वतन्त्रता दिवस की पुकार

१५ अगस्त का दिन कहता, आजादी अभी अधूरी है।
सपने सच होने बाकी हैं, रावी की शपथ न पूरी है ।।
जिनकी लाशों पर पग धर कर, आजादी भारत में आयी।
वे अब तक हैं खानाबदोश, गम की काली बदली छायी।।
कलकत्ते के फुटपाथों पर, जो आंधी-पानी सहते हैं।
उनसे पूछो, पन्द्रह अगस्त के बारे में क्या कहते हैं ?
हिन्दू के नाते उनका दुःख, सुनते यदि तुम्हें लाज आती ।
तो सीमा के उस पार चलो, सभ्यता जहाँ कुचली जाती ।।
इन्सान जहां बेचा जाता, ईमान खरीदा जाता है।
इस्लाम सिसकियां भरता है, डालर मन में मुस्काता है ।।
भूखों को गोली, नंगों को, हथियार पिन्हाये जाते हैं ।
सूखे कण्ठों से जेहादी, नारे लगवाये जाते हैं ।।
लाहौर, कराची, ढाका पर, मातम की है काली छाया ।
पख्तूनों पर, गिलगित पर है, गमगीन गुलामी का साया ।।
बस इसीलिए तो कहता हूँ, आजादी अभी अधूरी है ।
कैसे उल्लास मनाऊँ मैं ? थोड़े दिन की मजबूरी है ।।
दिन दूर नहीं खण्डित भारत को, पुनः अखण्ड बनायेंगे ।
गिलगित से गारो पर्वत तक, आजादी पर्व मनायेंगे ।।
उस स्वर्ण दिवस के लिये आज से, कमर कसें बलिदान करें।
जो पाया उसमें खो न जाँय, जो खोया उसका ध्यान करें ।। ●

कोटि चरण बढ़ रहे ध्येय की ओर निरन्तर

(१)

केशव के आजीवन तप की, यह पवित्रतम धारा।
साठ सहस ही नहीं, तरेगा इससे भारत सारा ।।
यह नवगंगा तोड़ चली है, बाधाओं की कारा ।
एक जह्नु क्या ? यहाँ पूर्ण पशुबल ने सिर दे मारा ।।

(२)

भू पर नहीं कोटि हृदयों में, इसकी धार प्रबल है ।
इसे बांध रखने का पापी, यत्न हुआ निष्फल है ।।
तोड़ हिमालय चीर जटायें, चली सिन्धु की ओर ।
नगर, ग्राम, पुर, डगर डुबाती, इसका ओर न छोर ।।

(३)

किसने ऐसा दूध पिया, जो रोके गति तूफानी ।
यह जीवन का ज्वार, चली उफनाती प्रखर जवानी ।।
युवक हार जाते हैं लेकिन, यौवन कभी न हारा ।
एक निमिष की बात नहीं है, चिर-संघर्ष हमारा ।।

(४)

पृथ्वीराज की आँखें जातीं, स्वप्न न उनके जाते ।
भर जाते हैं घाव, दाग पर, सदा अमिट रह जाते ।।
यह जन-गंगा जन-जीवन का कल्मष कलुष बहाती ।
जो जूबा सो पार हो गया, मुक्ति लुटाती जाती ।।

(५)

मृत में जीवन और जीवितों में, ज्वाला सुलगाती ।
भ्रष्ट भग्न माँ के मन्दिर को, पुनः पवित्र बनाती ।।
इसके सम्मुख सम्राटों के, मस्तक नत होने को ।
इसके तट पर राज्य, बिगड़ने को, बनने को ।।

(६)

पुण्य पूर्वजों के पौरुष, का यह प्रतिफल है ।
सृष्टि-काल का स्नेह, प्रलय का आकुल जल है ।।
कोटि बिन्दु बह रहे, सिन्धु का, अगम रूप धर ।
कोटि चरण बढ़ रहे, ध्येय की ओर निरन्तर ।।

(७)

यह परम्परा का प्रवाह है, कभी न खण्डित होगा ।
पुत्रों के बल पर ही मां का, मस्तक मण्डित होगा ।।
वह कपूत है जिसके रहते, मां की दीन दशा हो ।
शत भाई का घर उजाड़ता, जिसका महल बसा हो ।

(८)

घर का दीपक व्यर्थ, मातृ-मंदिर में जब अँधियारा ।
कैसा हास-विलास! कि, जब तक बना हुआ बँटवारा।।
किस बेटे ने मां के टुकड़े, करके दीप जलाये ?
किसने भाई की समाधि पर, ऊँचे महल बनाये ?

(९)

चिता-भस्म पर किसने सुख के, स्वर्णिम साज सजाये ?
किसने लाखों के विनाश पर, जय के वाद्य बजाये ?
किस कपूत ने पूत पंचनद को, कर डाला लाल ?
किसके पापों का प्रतिफल है, भोग रहा बंगाल ?

(१०)

किसने आग लगाकर, अपने घर में किया उजाला ?
किसने निज का सुख खरीद, मां का विक्रय कर डाला ?
शस्य-श्यामला स्वर्णभूमि, क्यों हुई आज कंगाल ?
किसके कारण देवभूमि में, आज अभाव, अकाल ?

(११)

जग-जननी ने भीख मांगने, का दुर्दिन क्यों देखा ?
पुत्रों के पापों का फल है, यह न नियति का लेखा ।।
सूर्य गिर गया अन्धकार में, ठोकर खाकर ।
भीख मांगता है कुबेर, झोली फैलाकर ।।

(१२)

कण-कण को मोहताज, कर्ण का देश हो गया ।
मां का आँचल, द्रुपद-सुता का केश हो गया ।।
जब तक अधरों में न भीम की, शोणित प्यास जगेगी ।
तब तक उर में अपमानों की, ज्वाला नहीं बुझेगी ।।

(१३)

कोटि दीप जल रहे, तमिस्रा चीर-चीर कर ।
कोटि चरण बढ़ रहे ध्येय की ओर निरन्तर ।।
आंसू नहीं, श्वेद शोणित की, आज मांग है ।
कंठ कंठ में मर मिटने का, अमिट राग है ।।

(१४)

प्राण-पुष्प ही नहीं, करो जीवन का अर्पण ।
अब न सहेंगे जननी के, केशों का कर्षण ।।
कंटक-पथ पर पांव बढ़ाते, गाते जाना ।
हर बाजी पर हमें यहां, सर्वस्व लगाना ।।

(१५)

जन्म-मरण का खेल अनूठा, इसमें हार नहीं है ।
वह क्या जल पायेगा जिसको, पथ से प्यार नहीं है ?
सन् पचीस का वर्ष ! पंथ पर, राही एक चला था ।
अन्धकार का वक्ष चीरकर, दीपक एक जला था ।।

(१६)

दैन्य-दास्य का पंक दबाकर, शत-दल कमल खिला था।
काल रात्रि को भेद ज्योति का, प्रखर पुंज निकला था ।।
पथ पर चलते चलते ही वह, राह बन गया ।
तिल-तिल कर जलते जलते ही, दाह बन गया ।।

(१७)

वह कैसा था भक्त, स्वयं भगवान बन गया।
कुम्भकार की कृति होकर, निर्माण बन गया।।
आज नहीं वह, किन्तु पंथ पर, चरण-चिह्न अंकित हैं।
मनु के वंशज प्रलयकाल से, क्यों शंकित हैं ?

(१८)

रामकृष्ण यदि गये, विवेकानन्द शेष हैं।
अभी मूर्ति की पूर्ति शेष है, प्रण अशेष है।।
आओ युग के सपनों को, साकार करें हम।
मृतकों में भी जीवन की, हुँकार भरें हम।।

(१९)

सबल भुजाओं में रक्षित है, नौका की पतवार।
चीर चलें सागर की छाती, पार करें मँझधार।।
ज्ञान-केतु लेकर निकला है, विजयी शंकर।
अब न चलेगा ढोंग, दम्भ, मिथ्या आडम्बर।।

(२०)

अब न चलेगा राष्ट्र प्रेम का, गर्हित सौदा।
यह अभिनव चाणक्य न फलने देगा, विष का पौधा।।
तन की शक्ति हृदय की श्रद्धा, आत्म-तेज की धारा।
आज जगेगा जग-जननी का, सोया भाग्य सितारा।।

(२१)

कोटि पुष्प चढ़ रहे, देव के शुभ चरणों पर।
कोटि चरण बढ़ रहे, ध्येय की ओर निरन्तर।। ●

आज कहे चाहे कुछ दुनिया

मां के सभी सपूत गूंथते, ज्वलित हृदय की माला ।
हिन्दूकुश से महासिन्धु तक, जली संघटन ज्वाला ।।
हृदय - हृदय में एक आग है, कण्ठ - कण्ठ में एक राग है ।
एक ध्येय है, एक स्वप्न, लौटाना मां का सुख - सुहाग है ।।
प्रबल विरोधों के सागर में हम सुदृढ़ चट्टान बनेंगे ।
जो आकर सर टकराएंगे अपनी - अपनी मौत मरेंगे ।।
विपदाएं आती हैं, आएं, हम न रुकेंगे, हम न रुकेंगे ।
आघातों की क्या चिन्ता है ? हम न झुकेंगे, हम न झुकेंगे ।।
सागर को किसने बांधा है ? तूफानों को किसने रोका ?
पापों की लंका न रहेगी, यह उंचास पवन का झोंका ।।
आंधी लघु - लघु दीप बुझाती, पर धधकाती है दावानल ।
कोटि-कोटि हृदयों की ज्वाला, कौन बुझायेगा ? किसमें बल ?
छुई मुई के पेड़ नहीं, जो छूते ही मुरझा जाएंगे ।
क्या तड़िताघातों से नभ के, ज्योतित तारे बुझ पाएंगे ?
प्रलय - घनों का वक्ष चीरकर, अंधकार को चूर - चूर कर ।
ज्वलित चुनौती सा चमका है, प्राची के पट पर शुभ दिनकर ।।
सत्य सूर्य के प्रखर ताप से, चमगादड़ उलूक छिपते हैं ।
खग-कुल के क्रन्दन को सुन कर, किरण-बाण क्या रुक सकते हैं ?
शुद्ध हृदय की ज्वाला से, विश्वास - दीप निष्कम्प जलाकर ।
कोटि-कोटि पग बढ़े जा रहे, तिल-तिल जीवन गला-गलाकर ।।
जब तक ध्येय न पूरा होगा, तब तक पग की गति न रुकेगी ।
आज कहे चाहे कुछ दुनिया, कल को बिना झुके न रहेगी ।। ●

आये जिस-जिस की हिम्मत हो

हिन्दु महोदधि की छाती में, धधकी अपमानों की ज्वाला,
और आज आसेतु हिमाचल, मूर्तिमान हृदयों की माला ।

सागर की उत्ताल तरंगों, में जीवन का जी भर क्रन्दन,
सोने की लंका की मिट्टी, लख कर भरता आह प्रभंजन ।

शून्य तटों से सर टकरा कर, पूछ रही सरयू की धारा,
सगर-सुतों से भी बढ़ कर मृत, आज हुआ क्या भारत सारा ?

यमुना कहती कृष्ण कहाँ हैं ? सरयू कहती राम कहाँ हैं ?
व्यथित गण्डकी पूछ रही है, चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ हैं ?

अर्जुन का गाण्डीव किधर है, कहाँ भीम की गदा सो गई ?
किस कोने में पांचजन्य है, कहाँ भीष्म की शक्ति खो गई ?

अगणित सीतायें अपहत हैं, महावीर निज को पहिचानो,
अपमानित द्रुपदायें कितनी, समरधीर ! शर को संधानो ।

अलक्षेन्द्र को धूलि चटाने वाले पौरुष फिर से जागो,
क्षत्रियत्व विक्रम के जागो, चणकपुत्र के निश्चय जागो ।

कोटि-कोटि पुत्रों की माता, अब भी पीड़ित अपमानित है,
जो जननी का दुख न मिटाएं, उन पुत्रों पर भी लानत है ।

लानत उनकी भरी जवानी पर, जो सुख की नींद सो रहे,
लानत है, हम कोटि-कोटि हैं, किन्तु किसी के चरण धो रहे ।

अब तक जिस जग ने पग चूमे, आज उसी के सम्मुख नत क्यों ?
गौरव-मणि खो कर भी मेरे, सर्पराज आलस में रत क्यों ?

गत गौरव का स्वाभिमान ले, वर्तमान की ओर निहारो,
जो जूठा खाकर पनपा है, उसके सम्मुख कर न पसारो ।

पृथ्वी की सन्तान भिक्षु बन, परदेशी का दान न लेगी,
गोरी की सन्तति से पूछो, क्या हमको पहिचान न लेगी ?

हम अपने को ही पहिचानें, आत्मशक्ति का निश्चय ठानें,
पड़े हुए जूठे शिकार को, सिंह नहीं जाते हैं खाने ।

एक हाथ में सृजन, दूसरे में हम प्रलय लिये चलते हैं,
सभी कीर्ति ज्वाला में जलते, हम अंधियारे में जलते हैं ।

आंखों में वैभव के सपने, पग में तूफानों की गति हो,
राष्ट्रभक्ति का ज्वार न रुकता, आये जिस-जिस की हिम्मत हो । ●

गीत नहीं गाता हूँ

(१)

बेनकाब चेहरे हैं,
दाग बड़े गहरे हैं,
टूटता तिलस्म, आज सच से भय खाता हूँ ।
गीत नहीं गाता हूँ ।

(२)

लगी कुछ ऐसी नज़र,
बिखरा शीशे सा शहर,
अपनों के मेले में मीत नहीं पाता हूँ ।
गीत नहीं गाता हूँ ।

(३)

पीठ में छुरी सा चांद
राहु गया रेखा फांद,
मुक्ति के क्षणों में बार-बार बँध जाता हूँ ।
गीत नहीं गाता हूँ । ●

(जनता पार्टी में टूटन भरे वातावरण में)

सपना टूट गया

हाथों की हल्दी है पीली
पैरों की मेंहदी कुछ गीली
पलक झपकने से पहले ही
सपना टूट गया ।

दीप बुझाया रची दिवाली
लेकिन कटी न मावस काली
व्यर्थ हुआ आवाहन
स्वर्ण सबेरा रूठ गया ।

नियति नटी की लीला न्यारी
सब कुछ स्वाहा की तैयारी
अभी चला दो कदम कारवाँ
साथी छूट गया, सपना टूट गया ।। ●

(जनता पार्टी टूटने के बाद की मनःस्थिति में)

आओ फिर से दिया जलाएँ

(१)

भरी दुपहरी में अँधियारा
सूरज परछाई से हारा
अन्तरतम का नेह निचोड़ें, बुझी हुई बाती सुलगाएँ।
आओ फिर से दिया जलाएँ ।

(२)

हम पड़ाव को समझे मंजिल
लक्ष्य हुआ आँखों से ओझल
वर्तमान के मोह-जाल में, आने वाला कल न भुलाएँ ।
आओ फिर से दिया जलाएँ ।

(३)

आहुति बाकी, यज्ञ अधूरा
अपनों के विघ्नों ने घेरा
अन्तिम जय का वज़्र बनाने, नव दधीचि हड्डियां गलाएँ ।
आओ फिर से दिया जलाएँ । ●

(भा. ज. पा. की स्थापना के अवसर पर लिखित)

गीत नया गाता हूँ

(१)

टूटे हुए तारों से फूटे बासन्ती स्वर,
पत्थर की छाती में उग आया नव अंकुर,
झरे सब पीले पात,
कोयल की कुहुक रात,
प्राची में अरुणिमा की रेख देख पाता हूँ।
गीत नया गाता हूँ ।

(२)

टूटे हुए सपने की सुने कौन सिसकी ?
अन्तर को चीर व्यथा पलकों पर ठिठकी।
हार नहीं मानूँगा,
रार नयी ठानूँगा,
काल के कपाल पर लिखता-मिटाता हूँ ।
गीत नया गाता हूँ । ●

(भारतीय जनता पार्टी के निर्माण के बाद)

दूर कहीं कोई रोता है

(१)

तन पर पहरा, भटक रहा मन,
साथी है केवल सूनापन,
बिछुड़ गया क्या स्वजन किसी का,
क्रन्दन सदा करुण होता है ।

(२)

जन्म-दिवस पर हम इठलाते,
क्यों न मरण-त्यौहार मनाते,
अन्तिम यात्रा के अवसर पर,
आंसू का अशकुन होता है ।

(३)

अंतर रोये, आंख न रोये,
धुल जायेंगे स्वप्न संजोये,
छलना भरे विश्व में केवल
सपना ही तो सच होता है ।

(४)

इस जीवन से **मृत्यु भली** है,
आतंकित जब गली - गली है,
मैं भी रोता आस - पास जब
कोई कहीं नहीं होता है ।
दूर कहीं कोई रोता है । ●

जीवन की ढलने लगी सांझ

जीवन की ढलने लगी सांझ
उमर घट गई
डगर कट गई
जीवन की ढलने लगी सांझ।
बदले हैं अर्थ
शब्द हुए व्यर्थ
शांति बिना खुशियां हैं बाँझ ।
सपनों से मीत
बिखरा संगीत
ठिठक रहे पाँव और झिझक रही झाँझ ।
जीवन की ढलने लगी साँझ ।। ●

(आपातकाल के दौरान पचास वर्ष पूरे होने पर)

मातृ-पूजा प्रतिबन्धित

पुष्प कंटकों में खिलते हैं
दीप अन्धेरों में जलते हैं ।
आज नहीं, प्रह्लाद युगों से
पीड़ाओं में ही पलते हैं ।
किन्तु यातनाओं के बल पर
नहीं भावनायें रुकती हैं ।
अन्यायी कर ही मलते हैं
चिता होलिका की जलती है । ●

(संघ के प्रथम प्रतिबन्ध १९४८ ई० के अवसर पर)

(२)

अनुशासन के नाम पर,
अनुशासन का खून ।
भंग कर दिया संघ को
ऐसा चढ़ा जनून ।
ऐसा चढ़ा जनून,
मातृ - पूजा प्रतिबन्धित ।
कुटिल कर रहे, केशव–
कुल की कीर्ति कलंकित ।
कह कैदी कविराय
तोड़ कानूनी कारा ।
गूँजेगा फिर भारत माँ
की जय का नारा । ●

(आपातकाल में द्वितीय प्रतिबन्ध १९७५ ई० के समय पर)

अन्तर्द्वन्द्व

क्या सच है, क्या शिव, क्या सुन्दर ?

(१)

शव का अर्चन,
शिव का वर्जन,
कहूँ विसंगति या रूपान्तर ?

(२)

वैभव दूना,
अन्तर सूना,
कहूँ प्रगति या प्रतिस्थलान्तर ?

(३)

मात्र संक्रमण ?
या नव सर्जन ?
स्वस्ति कहूँ या रहूँ निरुत्तर ? ●

(लेनिन की समाधि पर)

कौरव कौन
कौन पांडव

कौरव कौन
कौन पांडव
टेढ़ा सवाल है।
दोनों ओर शकुनि
का फैला
कूट जाल है।
धर्मराज ने छोड़ी नहीं
जुए की लत है।
हर पंचायत में
पांचाली
अपमानित है।
बिना कृष्ण के
आज
महाभारत होना है।
कोई राजा बने,
रंक को तो रोना है। ●

ऊँचाई

ऊँचे पहाड़ पर,
पेड़ नहीं लगते,
पौधे नहीं उगते,
न घास ही जमती है।

जमती है सिर्फ बर्फ,
जो कफन की तरह सफेद और
मौत की तरह ठंडी होती है।
खेलती खिल-खिलाती नदी,
जिसका रूप धारण कर
अपने भाग्य पर बूँद-बूँद रोती है।

ऐसी ऊँचाई
जिसका परस पानी को पत्थर कर दे
ऐसी ऊँचाई,
जिसका दरस हीन भाव भर दे
अभिनन्दन की अधिकारी है,
आरोहियों के लिए आमंत्रण है,
उस पर झण्डे गाड़े जा सकते हैं,
किन्तु कोई गोरैया,
वहां नीड़ नहीं बना सकती,
न कोई थका-मांदा बटोही
उसकी छांव में पल भर,
पलक ही झपका सकता है।

सच्चाई यह है कि
केवल ऊँचाई ही काफी नहीं होती,
सबसे अलग-थलग,
परिवेश से पृथक,
अपनों से कटा-बँटा,
शून्य में अकेला खड़ा होना,
पहाड़ की महानता नहीं,
मजबूरी है
ऊँचाई और गहराई में
आकाश-पाताल की दूरी है।
जो जितना ऊंचा,
उतना ही एकाकी होता है,
हर भार को स्वयं ही ढोता है,
चेहरे पर मुस्कानें चिपका,
मन ही मन रोता है।

जरूरी तो यह है कि
ऊँचाई के साथ विस्तार भी हो,
जिससे मनुष्य
ठूंठ-सा खड़ा न रहे,
औरों से घुले-मिले,
किसी को साथ ले,
किसी के संग चले ।

भीड़ में खो जाना,
यादों में डूब जाना,
स्वयं को भूल जाना,
अस्तित्व को अर्थ,
जीवन को सुगन्ध देता है।

धरती को बौनों की नहीं,
ऊँचे कद के इन्सानों की जरूरत है।
इतने ऊंचे कि आसमान को छू लें,
नये नक्षत्रों में प्रतिभा के बीज बो लें,

किन्तु इतने ऊँचे भी नहीं,
कि पाँव तले दूब ही न जमे,
कोई काँटा न चुभे,
कोई कली न खिले।

न बसंत हो, न पतझड़,
हो सिर्फ ऊँचाई का अंधड़,
मात्र अकेलेपन का सन्नाटा।

मेरे प्रभु !
मुझे इतनी ऊँचाई कभी मत देना
गैरो को गले न लगा सकूँ
ऐसी रूखाई कभी मत देना ●

पहचान

पेड़ के ऊपर चढ़ा आदमी
ऊँचा दिखाई देता है।
जड़ में खड़ा आदमी
नीचा दिखाई देता है।

आदमी न ऊंचा होता है, न नीचा होता है,
न बड़ा होता है, न छोटा होता है।
आदमी सिर्फ आदमी होता है।

पता नहीं इस सीधे, सपाट सत्य को
दुनिया क्यों नहीं जानती ।
और अगर जानती है,
तो मन से क्यों नहीं मानती ?

इससे फर्क नहीं पड़ता
कि आदमी कहां खड़ा है ?

पथ पर या रथ पर
तीर पर या प्राचीर पर ?

फांसी के तख्ते पर
या दिल्ली के तख्त पर ?

फर्क इससे पड़ता है कि जहां खड़ा है,
या जहां उसे खड़ा होना पड़ा है,
वहां उसका धरातल क्या है ?

हिमालय की चोटी पर पहुँच,
एवरेस्ट-विजय की पताका फहरा,
कोई विजेता यदि ईर्ष्या से दग्ध
अपने साथी से विश्वासघात करे,

तो क्या उसका अपराध
केवल इसलिए क्षम्य हो जायेगा कि
वह एवरेस्ट की ऊँचाई पर हुआ था ?

नहीं, अपराध अपराध ही रहेगा,
हिमालय की सारी धवलता
उस कालिमा को नहीं ढक सकती।

कपड़ों की दूधिया सफेदी जैसे
मन की मलिनता को नहीं छिपा सकती।

किसी संत कवि ने कहा है कि
मनुष्य के ऊपर कोई नहीं होता
मुझे लगता है कि मनुष्य के ऊपर
उसका मन होता है।

छोटे मन से कोई बड़ा नहीं होता,
टूटे मन से कोई खड़ा नहीं होता।

इसीलिये तो भगवान कृष्ण को
शस्त्रों से सज्ज, रथ पर चढ़े,
कुरुक्षेत्र के मैदान में खड़े,
अर्जुन को गीता सुनानी पड़ी थी।

मन हार कर, मैदान नहीं जीते जाते,
न मैदान जीतने से मन ही जीते जाते हैं।

चोटी से गिरने से
अधिक चोट लगती है।
हड्डी जुड़ जाती पर,
पीड़ा मन में सुलगती है।

इसका अर्थ यह नहीं कि
चोटी पर चढ़ने की चुनौती ही न मानें,
इसका अर्थ यह भी नहीं कि
परिस्थिति पर विजय पाने की न ठानें,

आदमी जहां है, वहीं खड़ा रहे ?
दूसरों की दया के भरोसे पर पड़ा रहे ?

जड़ता का नाम जीवन नहीं है,
पलायन पुरोगमन नहीं है,

आदमी को चाहिये कि वह जूझे,
परिस्थितियों से लड़े,
एक स्वप्न टूटे तो दूसरा गढ़े।

किन्तु कितना भी ऊंचा उठे,
मनुष्यता के स्तर से न गिरे।
अपने धरातल को न छोड़े,
अन्तर्यामी से मुंह न मोड़े ।

एक पांव धरती पर रखकर ही,
वामन भगवान ने आकाश-पाताल को जीता था।

धरती ही धारण करती है
कोई इस पर भार न बने,
मिथ्या अभिमान से न तने।

मनुष्य की पहचान,
उसके धन या सिंहासन से नहीं होती,
उसके मन से होती है।
मन की फकीरी पर
कुबेर की सम्पदा भी रोती है । ●

न मैं चुप हूँ, न गाता हूँ

(१)

सबेरा है, मगर पूरब दिशा में घिर रहे बादल,
रुई से धुंधलके में मील के पत्थर पड़े घायल,
ठिठके पांव,
ओझल गांव,
जड़ता है न गतिमयता,
स्वयं को दूसरों की दृष्टि से मैं देख पाता हूँ ।
न मैं चुप हूँ, न गाता हूँ ।

(२)

समय की सर्द सांसों ने चिनारों को झुलस डाला,
मगर हिमपात को देती चुनौती एक द्रुममाला,
बिखरे नीड़
विहँसी चीड़
आंसू हैं न मुस्कानें,
हिमानी झील के तट पर अकेला गुनगुनाता हूँ।
न मैं चुप हूँ न गाता हूँ । ●

दूध में दरार पड़ गई

(१)

खून क्यों सफेद हो गया ?
भेद में अभेद खो गया ।
बँट गये शहीद, गीत कट गए,
कलेजे में कटार गड़ गई ।
दूध में दरार पड़ गई ।

(२)

खेतों में बारूदी गंध,
टूट गये नानक के छन्द,
सतलुज सहम उठी, व्यथित सी वितस्ता है,
बसंत से बहार झड़ गई।
दूध में दरार पड़ गई।

(३)

अपनी ही छाया से बैर,
गले लगने लगे हैं गैर,
खुदकुशी का रास्ता, तुम्हें वतन का वास्ता
बात बनाएँ, बिगड़ गई ।
दूध में दरार पड़ गई । ●

हरी-हरी दूब पर

(१)
हरी हरी दूब पर
ओस की बूंदें
अभी थीं
अब नहीं हैं
ऐसी खुशियां
जो हमेशा हमारा साथ दें
कभी नहीं थीं,
कहीं नहीं हैं ।
(२)
अम्बर की कोख से
फूटा बाल सूर्य
जब पूरब की गोद में
पांव फैलाने लगा,
तो मेरी बगीची का,
पत्ता-पत्ता जगमगाने लगा
मैं उगते सूर्य को नमस्कार करूं
या उसके ताप से भाप बनी
ओस की बूँदों को ढूंढूं
सूर्य एक सत्य है
जिसे झुठलाया नहीं जा सकता
मगर ओस भी तो एक सच्चाई है
यह बात अलग है कि ओस क्षणिक है
क्यों न मैं क्षण-क्षण को जीऊँ ?
कण-कण में बिखरे सौंदर्य को पीऊँ ?
सूर्य तो फिर भी उगेगा
धूप तो फिर भी खिलेगी
लेकिन मेरी बगीची की
हरी हरी दूब पर
ओस की बूँद
शायद हर मौसम में नहीं मिलेगी । ●

जंग न होने देंगे

हम जंग न होने देंगे !
विश्व शान्ति के हम साधक हैं, जंग न होने देंगे !
कभी न खेतों में फिर खूनी खाद फलेगी,
खलिहानों में नहीं मौत की फसल खिलेगी,
आसमान फिर कभी न अंगारे उगलेगा,
ऐटम से नागासाकी फिर नहीं जलेगी।
युद्धविहीन विश्व का सपना भंग न होने देंगे।
जंग न होने देंगे ।।

हथियारों के ढेरों पर जिनका है डेरा,
मुँह में शान्ति, बगल में बम, धोखे का फेरा,
कफन बेचने वालों से कह दो चिल्लाकर,
दुनिया जान गई है उनका असली चेहरा।
कामयाब हो उनकी चालें ढंग न होने देंगे।
जंग न होने देंगे ।।

हमें चाहिए शान्ति जिन्दगी हमको प्यारी,
हमें चाहिए शान्ति सृजन की है तैयारी,
हमने छेड़ी जंग भूख से, बीमारी से,
आगे आकर हाथ बटाए दुनिया सारी।
हरी-भरी धरती को खूनी रंग न लेने देंगे।
जंग न होने देंगे ।।

भारत पाकिस्तान पड़ोसी, साथ-साथ रहना है,
प्यार करें या वार करें, दोनों को ही सहना है,
तीन बार लड़ चुके लड़ाई, कितना मँहगा सौदा,
रूसी बम हो या अमेरिकी, खून एक बहना है।
जो हम पर गुजरी बच्चों के संग न होने देंगे।
जंग न होने देंगे ।। ●

रोते रोते रात सो गई

(१)

झुकी न अलकें
झपी न पलकें
सुधियों की बारात खो गई !
रोते रोते रात सो गई ।

(२)

दर्द पुराना,
मीत न जाना,
बातों में ही प्रात हो गई ।
रोते रोते रात सो गई ।

(३)

घुमड़ी बदली,
बूँद न निकली,
बिछुड़न ऐसी व्यथा बो गई ।
रोते रोते रात सो गई । ●

राह कौन सी जाऊँ मैं ?

(१)

चौराहे पर लुटता चीर,
प्यादे से पिट गया वजीर,
चलूँ आखिरी चाल कि बाजी छोड़ विरक्ति रचाऊँ मैं ?
राह कौन सी जाऊँ मैं ?

(२)

सपना जन्मा और मर गया,
मधु ऋतु में ही बाग झर गया,
तिनके बिखरे हुए बटोरूँ या नव नीड़ सजाऊँ मैं ?
राह कौन सी जाऊँ मैं ?

(३)

दो दिन मिले उधार में,
जीवन के व्यापार में,
क्षण क्षण का हिसाब जोड़ूँ या पूँजी शेष लुटाऊँ मैं ?
राह कौन सी जाऊँ मैं ? ●

जीवन बीत चला

कल, कल करते, आज
हाथ से निकले सारे,
भूत भविष्यत् की चिंता में
वर्तमान की बाजी हारे,

पहरा कोई काम न आया
रसघट रीत चला।
जीवन बीत चला।।

हानि-लाभ के पलड़ों में
तुलता जीवन व्यापार हो गया,
मोल लगा बिकने वाले का,
बिना बिका बेकार हो गया,

मुझे हाट में छोड़ अकेला
एक-एक कर मीत चला।
जीवन बीत चला।। ●

६१वीं वर्षगाँठ पर

नये मील का पत्थर पार हुआ ।

(१)

कितने पत्थर शेष न कोई जानता ?
अन्तिम कौन पड़ाव नहीं पहचानता ?
अक्षय सूरज, अखण्ड धरती,
केवल काया, जीती-मरती,
इसलिए उम्र का बढ़ना भी त्यौहार हुआ।
नए मील का पत्थर पार हुआ ।

(२)

बचपन याद बहुत आता है,
यौवन रसघट भर जाता है,
बदला मौसम, ढलती छाया,
रिसती गागर, लुटती माया,
सब कुछ दाँव लगाकर घाटे का व्यापार हुआ।
नये मील का पत्थर पार हुआ । ●

६८वीं जन्म दिवस पर

(२५ दिसम्बर १९९३ ई०)

मुझे दूर का दिखाई देता है,
मैं दीवार पर लिखा पढ़ सकता हूँ,
मगर हाथ की रेखाएँ नहीं पढ़ पाता,
सीमा के पार भड़कते शोले
मुझे दिखाई देते हैं।
पर पावों के इर्दगिर्द फैली गर्म राख
मुझे नजर नहीं आती,
क्या मैं बूढ़ा हो चला हूँ ?
हर २५ दिसम्बर को
जीने की एक नयी सीढ़ी चढ़ता हूँ,
नये मोड़ पर
औरों से कम, स्वयं से ज्यादा लड़ता हूँ।

मैं भीड़ को चुप करा देता हूँ,
मगर अपने को जवाब नहीं दे पाता,
मेरा मन मुझे अपनी ही अदालत में खड़ा कर,
जब जिरह करता है,
मेरा हलफनामा मेरे ही खिलाफ पेश करता है,
तो मैं मुकदमा हार जाता हूँ,
अपनी ही नजर में, गुनहगार बन जाता हूँ,
तब मुझे कुछ दिखाई नहीं देता,
न दूर का, न पास का,
मेरी उम्र अचानक दस साल बढ़ जाती है,
मैं सचमुच बूढ़ा हो जाता हूँ। ●

अंग्रेजी के गढ़ को तोड़ो

(१)

बनने चली विश्वभाषा जो,
अपने घर में दासी,
सिंहासन पर अंग्रेजी को,
लख कर दुनिया हांसी,
लख कर दुनिया हांसी,
हिन्दी वाले हैं चपरासी,
अफसर सारे अंग्रेजीमय,
अवधी हों, मद्रासी,
कह कैदी कविराय,
विश्व की चिन्ता छोड़ो,
पहले घर में,
अंग्रेजी के गढ़ को तोड़ो ●

अनुशासन पर्व

अनुशासन का पर्व है
बाबा का उपदेश,
हवालात की हवा भी
देती यह संदेश,
देती यह संदेश,
राज डंडे से चलता,
जज हज करने जाँय
रोज कानून बदलता,
कह कैदी कविराय
शोर है अनुशासन का,
लेकिन जोर दिखाई
देता दुःशासन का ●

(आपातकाल में बन्दीगृह में रचित)

गूँजी हिन्दी

गूँजी हिन्दी विश्व में,
स्वप्न हुआ साकार,
राष्ट्र संघ के मंच से,
हिन्दी का जयकार,
हिन्दी का जयकार,
हिन्द हिन्दी में बोला,
देख स्वभाषा-प्रेम,
विश्व अचरज से डोला,
कह कैदी कविराय,
मेम की माया टूटी,
भारत माता धन्य,
स्नेह की सरिता फूटी ।

(राष्ट्रसंघ में प्रथम बार हिन्दी में भाषण करने के संदर्भ में रचित)

पुनः चमकेगा दिनकर

आजादी का दिन मना,
नई गुलामी बीच;
सूखी धरती, सूना अम्बर,
मन आंगन में कीच;
मन आंगन में कीच,
कमल सारे मुरझाए;
एक-एक कर बुझे दीप,
अँधियारे छाए;
कह कैदी कविराय,
न अपना छोटा जी कर;
चीर निशा का वक्ष,
पुनः चमकेगा दिनकर । ●

(आपातकाल के दौरान स्वाधीनता दिवस पर)

कदम मिलाकर चलना होगा

बाधाएँ आती हैं आएँ,
घिरें प्रलय की घोर घटायें,
पाँवों के नीचे अंगारे,
सिर पर बरसें यदि ज्वालायें,
निज हाथों से हँसते हँसते,
आग लगा कर जलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा ।। १ ।।

हास्य-रुदन में, तूफानों में,
अमर असंख्यक बलिदानों में,
उद्यानों में, वीरानों में,
अपमानों में, सम्मानों में,
उन्नत मस्तक उभरा सीना,
पीड़ाओं में पलना होगा !
कदम मिलाकर चलना होगा ।। २ ।।

उजियारे में, अंधकार में,
कल कछार में, बीच धार में,
घोर घृणामें, पूत प्यार में,
क्षणिक जीत में, दीर्घ हार में,
जीवन के शत-शत आकर्षक,
अरमानों को दलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा ।। ३ ।।

सम्मुख फैला अमर ध्येय पथ,
प्रगति चिरन्तन कैसा इति अथ,
सुस्मित हर्षित कैसा श्रम श्लथ,
असफल सफल, समान मनोरथ,
सब कुछ देकर कुछ न मांगते,
पावस बनकर ढलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा ।। ४ ।।

कुश कांटों से सज्जित जीवन,
प्रखर प्यार से वञ्चित यौवन,
नीरवता से मुखरित मधुवन,
पर-हित अर्पित अपना तन-मन,
जीवन को शत-शत आहुति में,
जलना होगा, गलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा ।। ५ ।। ●

गगन में लहरता है भगवा हमारा

घिरे घोर घन दासता के भयंकर
गँवा बैठे सर्वस्व आपस में लड़कर
बुझे दीप घर-घर, हुआ शून्य अम्बर
निराशा निशा ने जो डेरा जमाया
ये जयचन्द के द्रोह का दुष्ट फल है
जो अब तक अँधेरा, सबेरा न आया ।

मगर घोर तम में, पराजय के गम में
विजय की विभा ले, अंधेरे गगन में
उषा के वसन, दुश्मनों के नयन में
चमकता रहा, पूज्य भगवा हमारा
गगन में लहरता है भगवा हमारा।
गगन में लहरता है भगवा हमारा।।

भगवा है पद्मिनि के जौहर की ज्वाला
मिटाती अमावस लुटाती उजाला
नया एक इतिहास क्या रच न डाला
चिता एक, जलने हजारों खड़ी थीं
पुरुष तो मिटे, नारियाँ सब हवन की
समिधि बन अनल के पगों पर चढ़ी थीं

मगर जौहरों में, घिरे कोहरों में
धुएँ के घरों में, कि बलि के क्षणों में
धधकता रहा पूज्य भगवा हमारा
गगन में लहरता है भगवा हमारा ।

मिटे देवता, मिट गए शुभ्र मन्दिर
लुटी देवियाँ, लुट गए सब नगर घर
स्वयं फूट की अग्नि में घर जलाकर
पुरस्कार हाथों में लोहे की कड़ियाँ
कपूतों की माता खड़ी आज भी है
भरे अपनी आँखों में आँसू की लड़ियाँ

मगर दासता के भयानक भँवर में
पराजय समर में अखीरी क्षणों तक
शुभाशा बँधाता कि इच्छा जगाता
कि सब कुछ लुटाकर ही सब कुछ दिलाने
बुलाता रहा प्राण भगवा हमारा
गगन में लहरता है भगवा हमारा ।।

कभी थे अकेले हुए आज इतने
नहीं तब डरे तो भला अब डरेंगे ?
विरोधों के सागर में चट्टान हैं हम
जो टकरायेंगे मौत अपनी मरेंगे
लिया हाथ में ध्वज कभी ना झुकेगा
कदम बढ़ रहा है कभी ना रुकेगा
न सूरज के सम्मुख अन्धेरा टिकेगा

निडर हैं सभी हम अमर हैं सभी हम
कि सर पर हमारे वरदहस्त करता
गगन में लहरता है भगवा हमारा।
गगन में लहरता है भगवा हमारा ।। ●

संकल्प

झुक नहीं सकते

टूट सकते हैं मगर हम झुक नहीं सकते।
सत्य का संघर्ष सत्ता से,
न्याय लड़ता निरंकुशता से,
अँधेरे ने दी चुनौती है,
किरण अन्तिम अस्त होती है।

दीप निष्ठा का लिए निष्कम्प,
वज्र टूटे या उठे भूकम्प,
यह बराबर का नहीं है युद्ध,
हम निहत्थे शत्रु हैं सन्नद्ध,
हर तरह के शस्त्र से है सज्ज,
और पशुबल हो उठा निर्लज्ज ।

किन्तु फिर भी जूझने का प्रण,
पुनः अंगद ने बढ़ाया चरण,
प्राण-प्रण से करेंगे प्रतिकार,
समर्पण की माँग अस्वीकार ।

दाँव पर सब कुछ लगा है, रुक नहीं सकते।
टूट सकते हैं मगर हम झुक नहीं सकते। ●

उनकी याद करें

जो बरसों तक लड़े जेल में, उनकी याद करें।
जो फाँसी पर चढ़े खेल में, उनकी याद करें।।
याद करें काला पानी को,
अंग्रेजों की मनमानी को,
कोल्हू में जुट तेल पेरते,
सावरकर से बलिदानी को ।

याद करें बहरे शासन को,
बम से थर्राते आसन को,
भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु,
के आत्मोत्सर्ग पावन को ।
अन्यायी से लड़ें, दया की मत फरियाद करें।
उनकी याद करें।

याद करें हम पुर्तगाल को,
जुल्म सितम के तीस साल को,
फौजी बूटों तले क्रांति की,
सुलगी चिनगारी विशाल को ।

याद करें सालाजारों को,
जारों के अत्याचारों को,
साइबेरिया के निर्वासित,
शिविरों के हाहाकारों को।
स्वतंत्रता के नए समर का शंख निनाद करें।
उनकी याद करें।

बलिदानों की बेला आई,
लोकतन्त्र दे रहा दुहाई,
स्वाभिमान से वही जियेगा,
जिसकी कीमत गई चुकाई ।

मुक्ति मांगती शक्ति संगठित,
युक्ति सुसंगत भक्ति अकम्पित,
कृति तेजस्वी धृति हिमगिरि-सी,
मुक्ति मांगती गति अप्रतिहत ।
अन्तिम विजय सुनिश्चित, पथ में क्यों अवसाद करें।
उनकी याद करें । ●

देखो हम बढ़ते ही जाते

उज्ज्वलतर उज्ज्वलतम होती
है महासंगठन की ज्वाला,
प्रतिपल बढ़ती ही जाती है
चण्डी के मुण्डों की माला ।

यह नागपुर से लगी आग
ज्योतित भारत माँ का सुहाग,
उत्तर दक्षिण पूरब पश्चिम
दिशि-दिशि गूँजा संगठन राग ।

केशव के जीवन का पराग,
अन्तस्थल की अवरुद्ध आग।
भगवा ध्वज का संदेश त्याग,
वन विजन कान्त नगरी अशांत,
पंजाब सिन्ध संयुक्त प्रान्त ।

केरल कर्नाटक औ' बिहार
कर पार चला संगठन राग
हिन्दू हिन्दू मिलते जाते
देखो हम बढ़ते ही जाते ।

यह माधव अथवा महादेव
निज जटाजूट में धारण कर
मस्तक पर धर झरझर निर्झर
आप्लावित तन मन प्राण प्राण
हिन्दू ने निज को पहचाना
कर्त्तव्य कर्म सर-संधाना ।

हे ध्येय दूर, संसार क्रूर, मदमत्त चूर
पथ भरा शूल, जीवन दुकूल,
जननी के पग की तनिक धूल
माथे पर ले, चल दिए सभी मदमाते
देखो हम बढ़ते ही जाते । ●

पड़ोसी से

एक नहीं, दो नहीं, करो बीसों समझौते
पर स्वतंत्र भारत का मस्तक नहीं झुकेगा ।

अगणित बलिदानों से अर्जित यह स्वतंत्रता
अश्रु, स्वेद, शोणित से सिंचित यह स्वतंत्रता
त्याग, तेज, बल से है रक्षित यह स्वतंत्रता
दुखी मनुजता के हित अर्पित यह स्वतंत्रता।

इसे मिटाने की साजिश करने वालों से
कह दो चिनगारी का खेल बुरा होता है
औरों के घर आग लगाने का जो सपना
वह अपने ही घर में सदा खरा होता है।

अपने ही हाथों तुम अपनी कब्र न खोदो
अपने पैरों आप कुल्हाड़ी नहीं चलाओ
ओ नादान पड़ोसी अपनी आँखें खोलो
आजादी अनमोल न इसका मोल लगाओ।

पर तुम क्या जानो आजादी क्या होती है
तुम्हें मुफ्त में मिली न कीमत गई चुकाई
अंग्रेजों के बल पर दो टुकड़े पाये हैं
माँ को खण्डित करते तुमको लाज न आई।

अमरीकी शस्त्रों से अपनी आजादी को
दुनिया में कायम रख लोगे, यह मत समझो
दस बीस अरब डालर लेकर आनेवाली
बरबादी से तुम बच लोगे, यह मत समझो।
धमकी जेहाद के नारों से, हथियारों से
कश्मीर कभी हथिया लोगे, यह मत समझो।
हमलों से, अत्याचारों से, संहारों से
भारत का शीश झुका लोगे, यह मत समझो।

जब तक गंगा की धार, सिंधु में ज्वार
अग्नि में जलन, सूर्य में तपन शेष,
स्वातन्त्र्य समर की वेदी पर अर्पित होंगे
अगणित जीवन, यौवन अशेष।

अमरीका क्या संसार भले ही हो विरुद्ध
काश्मीर पर भारत का ध्वज नहीं झुकेगा,
एक नहीं दो नहीं, करो बीसों समझौते
पर स्वतंत्र भारत का मस्तक नहीं झुकेगा। ●

(अमेरिका-पाकिस्तान समझौते पर प्रतिक्रिया)

नई गांठ लगती

(१)

जीवन की डोर छोर छूने को मचली,
जाड़े की धूप स्वर्ण कलशों से फिसली,
अन्तर की अमराई
सोयी पड़ी शहनाई,
एक दबे दर्द - सी सहसा ही जगती ।
नई गाँठ लगती ।

(२)

दूर नहीं, पास नहीं, मंजिल अजानी,
सांसों के सरगम पर चलने की ठानी,
पानी पर लकीर - सी,
खुली जंजीर - सी,
कोई मृगतृष्णा मुझे बार-बार छलती ।
नई गांठ लगती ।

(३)

मन में लगी जो गांठ मुश्किल से खुलती,
दागदार जिन्दगी न घाटों पर धुलती,
जैसी की तैसी नहीं,
जैसी है वैसी सही,
कबिरा की चादरिया बड़े भाग मिलती।
नई गांठ लगती । ●

मौत से ठन गई

ठन गई !
मौत से ठन गई !
जूझने का मेरा कोई इरादा न था,
मोड़ पर मिलेंगे इसका वादा न था,
रास्ता रोककर वह खड़ी हो गयी,
यों लगा जिन्दगी से बड़ी हो गयी ।
मौत की उम्र क्या ? दो पल भी नहीं,
जिन्दगी-सिलसिला, आज कल की नहीं,
मैं जी भर जिया, मैं मन से मरूँ,
लौट कर आऊँगा, कूच से क्यों डरूँ ?
तू दबे पांव, चोरी छिपे से न आ,
सामने वार कर, फिर मुझे आजमा।
मौत से बेखबर जिन्दगी का सफर,
शाम हर सुरमई, रात बंशी का स्वर,
बात ऐसी नहीं कि कोई गम ही नहीं,
दर्द अपने पराये कुछ कम भी नहीं।
प्यार इतना परायों से मुझको मिला,
न अपनों से रहा कोई बाकी गिला,
हर चुनौती से दो हाथ मैंने किये,
आंधियों में जलाये हैं बुझते दिये,
आज झकझोरता तेज तूफान है,
नाव भँवरों की बाहों में मेहमान है,
पार पाने का कायम मगर हौसला,
देख तूफां का तेवर तरी तन गयी,
मौत से ठन गई । ●

मैं सोचने लगता हूँ

तेज रफ्तार से दौड़ती बसें,
बसों के पीछे भागते लोग,
बच्चे सम्हालती औरतें,

सड़कों पर इतनी धूल उड़ती है
कि मुझे कुछ दिखायी नहीं देता।
मैं सोचने लगता हूँ ।

पुरखे सोचने के लिये आँखें बन्द करते थे,
मैं आँखें बन्द होने पर सोचता हूँ

बसें ठिकानों पर क्यों नहीं ठहरती,
लोग लाइनों में क्यों नहीं लगते,
आखिर यह भागदौड़ कब तक चलेगी ?

देश की राजधानी में
संसद के सामने,
धूल कब तक उड़ेगी ?

मेरी आँखें बन्द हैं,
मुझे कुछ दिखाई नहीं देता ।
मैं सोचने लगता हूँ । ●

यक्ष प्रश्न

जो कल थे,
वे आज नहीं हैं ।
जो आज हैं,
वे कल नहीं होंगे ।
होने, न होने का क्रम,
इसी तरह चलता रहेगा,
हम हैं, हम रहेंगे,
यह भ्रम भी सदा पलता रहेगा ।
सत्य क्या है ?
होना या न होना ?
या दोनों ही सत्य हैं ?

जो है, उसका होना सत्य है,
जो नहीं है, उसका न होना सत्य है ।
मुझे लगता है कि
होना-न-होना एक ही सत्य के
दो आयाम हैं,
शेष सब समझ का फेर,
बुद्धि के व्यायाम हैं ।

किन्तु न होने के बाद क्या होता है,
यह प्रश्न अनुत्तरित है ।

प्रत्येक नया नचिकेता,
इस प्रश्न की खोज में लगा है।
सभी साधकों को इस प्रश्न ने ठगा है।
शायद यह प्रश्न, प्रश्न ही रहेगा।
यदि कुछ प्रश्न अनुत्तरित रहें
तो इसमें बुराई क्या है ?
हाँ, खोज का सिलसिला न रुके,
धर्म की अनुभूति,
विज्ञान का अनुसंधान,
एक दिन, अवश्य ही
रुद्ध द्वार खोलेगा ।
प्रश्न पूछने के बजाय
यक्ष स्वयं उत्तर बोलेगा । ●

कुमारसभा पुस्तकालय के कौस्तुभ जयन्ती समारोह (१९९४ ई०)
पर ऐतिहासिक 'एकल काव्यपाठ'

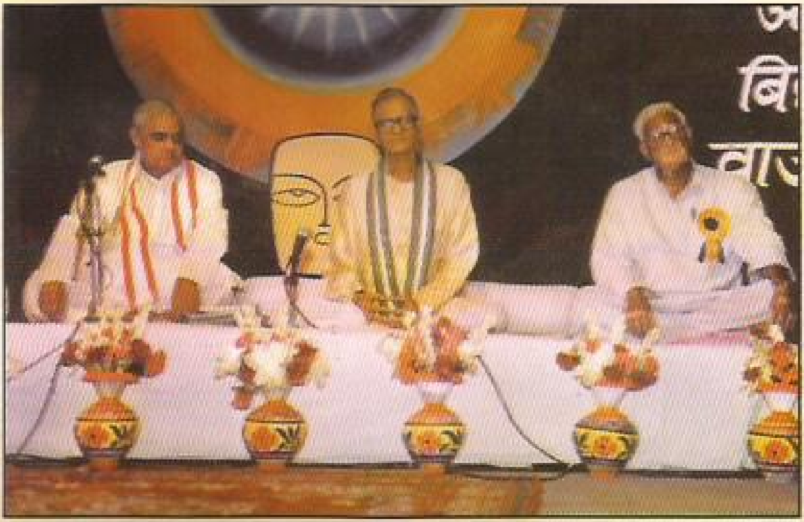

१३ अगस्त १९९४ ई० (तुलसी जयन्ती) को 'एकल काव्यपाठ' कार्यक्रम में मंचस्थ हैं कवि श्री अटल बिहारी वाजपेयी, कार्यक्रम अध्यक्ष आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री एवं पुस्तकालय के तत्कालीन अध्यक्ष श्री जुगलकिशोर जैथलिया।

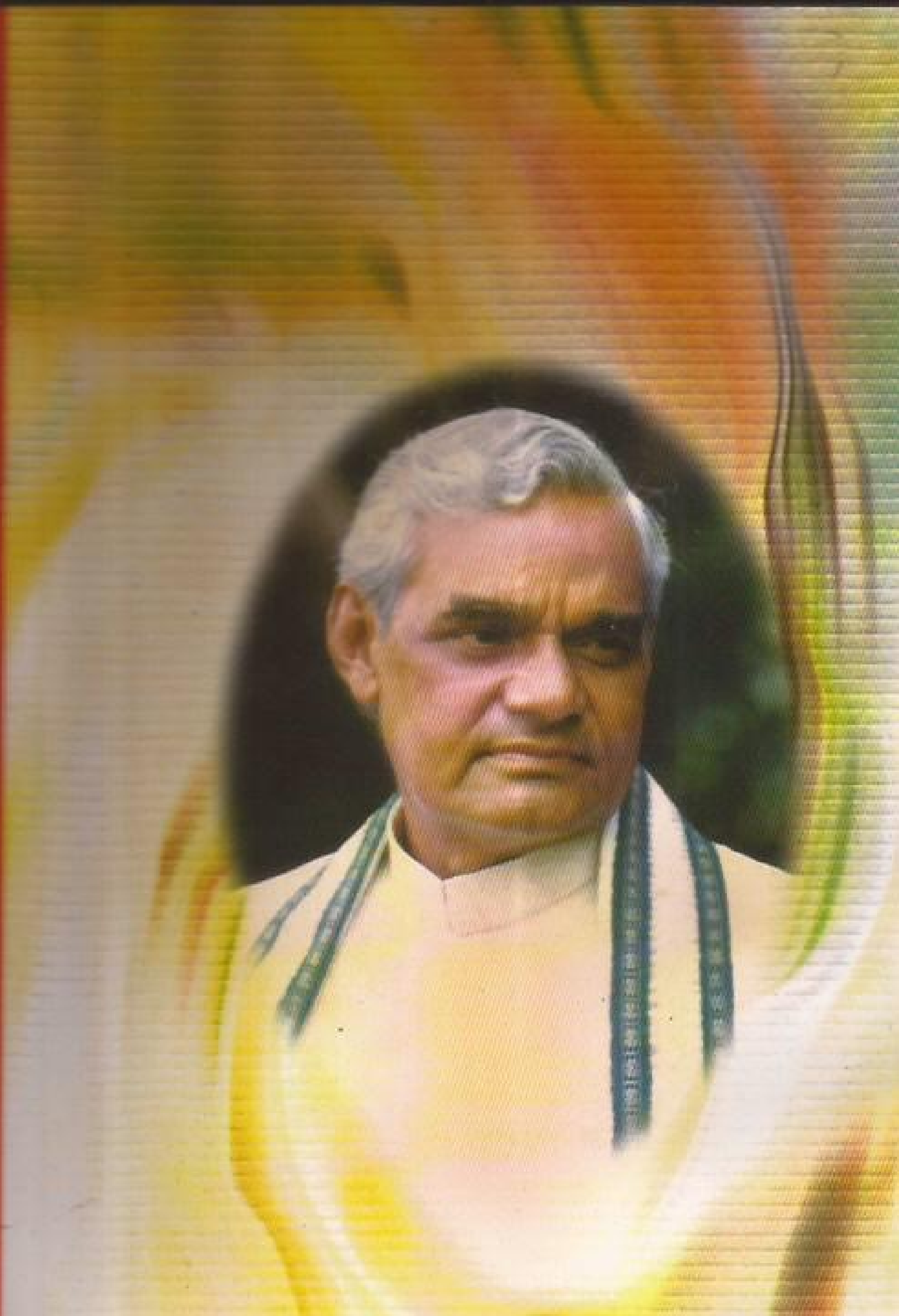

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय

कोलकाता